Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 11, Nov- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

हिन्दी की सांस्कृतिक आलोचना

अंजनी कुमार श्रीवास्तव, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी(बिहार)

हिन्दी आलोचना का वास्तविक आरम्भ भारतेंदु युग से हुआ | भारतेंदु युग के केंद्र में स्वत्व है | स्वधर्म, स्वभाषा, स्वराज, स्वदेशी और स्वाभिमान इस स्वत्व के आयाम हैं | प्राचीन और नवीन की विचारपूर्वक मीमांसा इस स्वत्व को प्राप्त करने की प्रविधि है |भारतेंदु युग-दृष्टि का निर्माण इन्हीं दोनों से हुआ है| लक्ष्य है स्वत्व की प्राप्ति;माध्यम है प्राचीन और नवीन की विचारपूर्वक मीमांसा| यही उस युग का भारतबोध है |भारतबोध की इस चेतना का आधार भारतीय संस्कृतिक गौरव है |इसी भारतबोध के साथ हिन्दी आलोचना का आरम्भ होता है | अत: हिन्दी आलोचना आरंभ से ही सांस्कृतिक तत्वों को लेकर चलती है |

हिन्दी आलोचना के आरम्भ मेंही भारतबोध कीअनुगूंजभारतेंदु के'नाटक' निबंध में सुनाई पड़ती है|भारतेंदु पूरे स्वाभिमान से कहते हैं "यदि कोई हमसे यह प्रश्न करैं कि सब के पहिले किस देश में नाटकों का प्रसार हुआ तो हम क्षण मात्र का भी विलम्ब किए बिना मुक्त कंठ से कह देंगे 'भारतवर्ष' में | इस का प्रमाण यह है कि जिस देश में संगीत और साहित्य प्रथम परिपक्व हुए होंगे वहीँ प्रथम नाटक का भी प्रचार हुआ होगा | हम नहीं समझ सकते कि पृथ्वी की कोई और जाति भी भारतवर्ष के सामने इस विषय में मुँह खोले |"[1]स्वाभिमान के साथ ही नाटकनिबन्ध में कई स्थलों पर प्राचीन को युगानुकूल बनाने पर भी जोर है| इसके लिए प्राचीन और नवीन की विचारपूर्वक मीमांसा की प्रविधि का प्रयोग भारतेंदु करते हैं "नाटकादिदृश्यकाव्यप्रणयन करना हो तो प्राचीन समस्त रीति ही परित्याग करै यह आवश्यक नहीं है क्योंकि जो सब प्राचीन रीति वा पद्धति आधुनिक सामाजिक लोगों की मतपोषिकाहोंगी, वह सब अवश्य ग्रहण होंगी |"[2] स्वत्व की प्राप्ति और इसके लिए प्राचीन और नवीन की विचारपूर्वक मीमांसा की प्रविधि बालकृष्ण भट्ट,प्रेमघन और प्रतापनारायण मिश्र आदि भारतेंदु युग

[1]भारतेंदु हरिश्चंद्र, नाटक, सं. ओमप्रकाश सिंह, भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली-1 , प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2010, पृ.28
[2]वही, पृ.12

के सभी लेखकों में दिखाई पड़ती है | इस प्रकार हिन्दी आलोचना का उद्भव ही राष्ट्रीय-सांस्कृतिक गौरव बोध के साथ होता है |

बालमुकुन्द गुप्त की अश्रुमती की आलोचना में यह गौरव बोध प्रशस्त रूप से सामने आता है | इस आलोचना का व्यापक प्रभाव भी हुआ | आगे महावीर प्रसाद द्विवेदी,रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदीसबमेंकिसी-न-किसी रूप में यह स्वत्व दिखाई देता है| परिणामस्वरूप भारतेंदु युग से लेकर स्वाधीनता युग के थोड़े समय बाद तक की हिन्दी आलोचना की प्रबल धारास्वकेन्द्रित आलोचना है | इस युग तक आलोचना का सम्दर्भ-बिंदु भारत की सांस्कृतिक चेतना है | भारतीय मानदंड प्रधान है | प्राचीन और नवीन की विचार पूर्वक मीमांसा में पश्चिमी या यूरोपीय आलोचना के तत्त्वों का समावेश अवश्य है, किन्तु स्थापना भारतीय मानदंडों की है | रस और लोकमंगल इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है |रस की मनोवैज्ञानिक व्याख्या युग सन्दर्भ में हुई है, किन्तु अवधारणा भारतीय है | भारतीय मनीषा ने जिन मूल्यों और मानदंड को अर्जित किया है उसकी प्रतिष्ठा सर्वत्र दिखाई पड़ती है | कई बार भारतीय विचारों और सन्दर्भों आदि की आलोचना भी दिखाई देती है, किन्तु यह भी प्राचीन और नवीन की विचारपूर्वक मीमांसा का ही अंग है | स्वत्व संघर्ष के युग में यह भारतीय जीवन-मूल्य, भारतीय संस्कृति और जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा का ही उद्योग है | इसलिए आरंभिक आलोचना से लेकर स्वातंत्र्योत्तर युग तक की हिन्दी आलोचना में सांस्कृतिक तत्त्व प्रबल रूप में दिखाई देते हैं |

हिन्दी आलोचना के परवर्ती युग की एक महत्त्वपूर्ण धारा इन सांस्कृतिक तत्त्वों को आलोचना और भारतीय जीवन-दृष्टि से बहिष्कृत करने का उद्योग है |वस्तुवाद, प्रगतिशील चेतना और मार्क्स के सिद्धान्तों की चर्चा इनके द्वारा की गई, किन्तु इनका मूल उद्देश्य भारत के सांस्कृतिक बोध को नष्ट करना रहा | इसलिए यह धारा मूलत: भारतीय सांस्कृतिक तत्वों से टकराती रही | यद्यपि इसका आरम्भ 1936 से हुआ, किन्तु स्वातंत्र्योत्तर युग में यह तत्कालीन राजसत्ता के गठजोड़ और वृहत तंत्र के कारण अपने एजेंडे में सफलता की ओर बढ़ने लगी | इनके उद्योग और तंत्र नेहिन्दी आलोचना में एक सांस्कृतिक शून्य उत्पन्न कर दिया | ऐसे समय हिन्दी आलोचना में विष्णुकांत शास्त्री, राममूर्ति त्रिपाठी, कमल किशोर गोयनका और रामस्वरूपचतुर्वेदी जैसे आलोचकों ने इस सांस्कृतिक शून्य को भरने का प्रयास किया | कन्हैया सिंह और नन्दकिशोरपाण्डेय जैसे आलोचकों ने आगे इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कार्य किया | हिन्दी आलोचना की यह धारा सांस्कृतिक आलोचना है | भारतेंदु युग से

स्वातंत्र्योत्तरयुग तक की आलोचना में यद्यपि सांस्कृतिक तत्त्व दिखाई पड़ते हैं, किन्तु यह आलोचना स्वाधीनता आन्दोलन की चेतना के संदर्भ से विकसित आलोचना है |इतिहास, संस्कृति और साहित्य सभी क्षेत्रों में यूरोपीय मानस के समानान्तर एक भारतीय दृष्टिकोण विकसित करने की चुनौती थी | हिन्दी आलोचना ने यह कार्य सम्पन्न किया | यह आलोचना सांस्कृतिक आलोचना की पृष्ठभूमि है |

सांस्कृतिक आलोचना अपनी शक्ति अपनी पूर्ववर्ती आलोचना से ग्रहण करती है | वह चेतना जिसने पराधीनता के युग में भी अपने स्वत्व को स्थापित किया | स्वतंत्रता के बाद हिन्दी आलोचना में उत्पन्न सांस्कृतिक शून्य,भारत विखंडन और हिन्दू द्रोह की केन्द्रीयता के कारण जब पुन: सांस्कृतिक तत्त्वों को स्थापित करने की आवश्यकता हुई तब जो आलोचना विकसित हुई वह सांस्कृतिक आलोचना है | सांस्कृतिक आलोचना नाम को कल्चरलक्रिटिसिज्म का अनुवाद नहीं समझना चाहिए | इसका पश्चिम में विकसित कल्चरलक्रिटिसिज्म से कोई संबंध नहीं है |

सांस्कृतिक आलोचना का दायित्व बहुत बड़ा है- सनातन सांस्कृतिक प्रवाह में युग के साहित्य का मूल्यांकन करना | इतिहास में प्रवाह के साथ कई बार तात्कालिक परिस्थितियों के कारण विच्छेद की स्थिति उत्पन्न होती है | इस विच्छेद से सांस्कृतिक प्रवाह कई बार बाधित भी होता है | इस तात्कालिकता के साथ सनातन के सम्बन्ध का विवेचन-विश्लेषण सांस्कृतिक आलोचना का उद्देश्य है | काल की अखंड चेतना और युगानुकूल अभिग्रहण यह भारतीयता का लक्षण है | यही सांस्कृतिक आलोचना का धर्म है |सांस्कृतिक प्रवाह में किसी विशेष युग में किसी विशेष तत्त्व की प्रधानता हो सकती है, किन्तु शेष तत्त्व भी बने रहते हैं | हमारी सांस्कृतिक जीवन धारा के उपयुक्त तत्वों की खोज और विकास इसका लक्ष्य है |

अब प्रश्न उठता है कि सांस्कृतिक आलोचना की प्रविधि विशेष क्या है? सांस्कृतिक आलोचना के तत्त्व क्या हैं? सांस्कृतिक आलोचना किसी विशिष्ट प्रविधि या विशिष्ट तत्त्वों में आबद्ध कर आलोचना को किसी सींखचे में बंद करने का समर्थन नहीं करती | यद्यपि सांस्कृतिक बोध, भारतीय जीवन-मूल्य और अध्यात्म आदि की अवस्थिति सांस्कृतिक आलोचना में दिखाई देती है, किन्तु केवल इन्हें ही तत्त्व मानकर इसे सीमित करना भी उचित नहीं है | सांस्कृतिक आलोचना उदार और लोकतांत्रिक आलोचना है | समस्त प्रविधियां, सभी प्रकार की आलोचना जिनका सन्दर्भ-बिंदु या रेफरेंसप्वाइंट

भारत है वह सांस्कृतिक आलोचना है | भारतीय संस्कृति और भारतीय जीवन बोध पर सैकड़ों पुस्तकों के उल्लेख के बावजूद यदि सन्दर्भ-बिंदु भारत नहीं है तो वह सांस्कृतिक आलोचना नहीं है | संदर्भ-बिंदु भारत होने का तात्पर्य है स्वयंसिद्ध के रूप में भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता और भारतीय सांस्कृतिक गौरव का स्वीकार | संक्षेप में कहें तो भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता और भारतीय सांस्कृतिक गौरव को स्वीकार कर एक सनातन सांस्कृतिक प्रवाह के रूप में साहित्य का मूल्यांकन करने वाली आलोचना प्रणाली सांस्कृतिक आलोचना है |

सांस्कृतिक आलोचना एक सनातन सांस्कृतिक प्रवाह के रूप में साहित्य का मूल्यांकन है | लेकिन, यह ऐतिहासिक आलोचना नहीं है | यहाँ बाह्य तत्वों की तुलना में चेतना का प्रवाह अधिक महत्त्वपूर्ण है | आचार्य विष्णुकांत शास्त्री ने निराला और पंत की परवर्ती कविताओं की व्याख्या में इसी प्रकार की चेतना को रेखांकित किया है | भक्ति और अध्यात्म की आधुनिक युग में उपस्थितिकई आलोचकों को दुविधा में डाल देती है | अपना सन्दर्भ-बिंदु भारत के बाहर रखनेवाला आलोचक इससे व्यथित हो जाता है| वह विक्षिप्तता और विचलन के आरोप लगाने लगता है | लेकिन, सांस्कृतिक आलोचक के लिए भक्ति और अध्यात्म भारतीय सांस्कृतिक धारा कासहज प्रवाह है| एक सांस्कृतिक आलोचक के रूप में विष्णुकांत शास्त्री निराला की भक्ति कविताओं की इस प्रकार व्याख्या करते हैं :

निराला की अंत:स्थवेदनानुभूति व्यक्तिगत वेदना से उठकर सामाजिक समवेदना में और उससे भी निखर कर अध्यात्म वेदना में एवं वेदना जयी होकर भक्ति में परिणत हो गयी है | क्या इसे निराला का टूटना या झुकना कहा जा सकता है ? टूटा हुआ व्यक्ति ‘दुख भी सुख का बंधु बना’नहीं कहा करता और यदि यह झुकना है तो उस क्षितिज का-सा झुकना है जिसका चरण-चुम्बन करने के लिए आकाश भी झुक जाता है |

हृदय की वृत्तियों का विस्तार, परिष्कार और संस्कार करनेवाली निराला की इन वेदनामयी कविताओं को पढ़ कर हम समझ सकते हैं कि आदि-कवि का सात्त्विक शोक श्लोकत्व प्राप्त कर जगत् का उद्धार करनेवाली रामकथा कैसे दे सका था, भवभूति यह कैसे कह सके थे, ‘एकोरस: करुण

एवनिमित्तभेदात्’, अरस्तू ने यह क्यों माना था कि चित्त के शोधन के लिए करुणा का उद्रेक अनिवार्य है |[3]

इसी प्रकार पंत की अरविंद दर्शन से प्रभावित परवर्ती कविताओं की व्याख्या करते हुए शास्त्रीजीस्पष्ट कहते हैं किछायावादी युग में पंत में जिस आध्यात्मिक चेतना का विकास हुआ था प्रगतिवादी युग में भी वे उस आध्यात्मिक चेतना से युक्त थे |[4]युगांत और युगवाणी में संकलित कविताओं के माध्यम से शास्त्रीजी ने सिद्ध किया है कि पंत ने कभी अध्यात्म को नहीं छोड़ा है |वे लिखते हैं :

उन्होंने (पंत ने) अपनी पूर्व स्थापनाओं को नकारा नहीं है | वे मिथ्या से सत्य की ओर नहीं गये हैं | वे सत्य से वृहत्तर सत्य की ओर गये हैं | जिसको उन्होंने अपने अंत:करण में उपलब्ध किया, जो उनकी चेतना का अनिवार्य अंग बन गया उसको नकारे बिना उन्होंने उसमें परिवर्द्धन किया, नवीन संयोजन किया | इस वृहत्तर सत्य की उपलब्धि उन्होंने बुद्धि के स्तर पर भी की और भाव के स्तर पर भी | अत: वे अपनी सर्जना के स्वयं समर्थ व्याख्याकार रहे हैं | जिस तरह छायावाद से मार्क्सवाद की तरफ जाते समय उन्होंने सौन्दर्यबोध को त्यागा नहीं, उसको और विस्तृत किया, उसी तरह मार्क्सवादसे अरविन्द दर्शन की तरफ जाते हुए उन्होंने लोक कल्याण को अपनी चेतना से ओझल नहीं होने दिया |[5]

खड्गहस्त आलोचकों के पंत पर आक्रमण का न केवल विष्णुकांत शास्त्री ने उत्तर दिया, बल्कि अरविंद दर्शन से प्रभावित कविताओं को अमृतचेतना-काव्य से अभिहित किया |निराला और पंत की परवर्ती कविताओं के महत्त्व को उद्घाटित करना सांस्कृतिक आलोचना का महत्वपूर्ण प्रदाय है |

सांस्कृतिक आलोचना समरसता और समन्वय की साधना है | विभेद को पहचानते हुए और उनका विवेचन-विश्लेषण करते हुए भी समन्वय के बिंदु की खोज सांस्कृतिक आलोचना की महत्त्वपूर्ण

[3]विष्णुकांत शास्त्री, कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबंध, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, 1963, पृ. 22
[4]विष्णुकांत शास्त्री,*कवि पंत के अमृतचेतना-काव्य की भूमिका*,विष्णुकांत शास्त्री : चुनी हुई रचनाएँ-1 , श्री बड़ाबाजारकुमारसभा पुस्तकालय, कोलकाता, 2003,पृ. 275

[5]वही, पृ. 274

विशेषता है | समरसता और समन्वय भारत की सांस्कृतिक चेतना की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है | सांस्कृतिक आलोचक कन्हैया सिंह धर्मप्रचारक तथा मुस्लिम सत्ता के हस्तक के रूप में सूफियों की आलोचना करते हुए भी सच्चे सूफियों की प्रशंसा करते हैं[6] तथा जायसी को समरसता के स्वप्नद्रष्टा के रूप देखते हैं |[7]कन्हैया सिंह भारतीय योग-दर्शन और सूफी मत के समन्वय की खोज करते हैं| वे लिखते हैं "हिन्दी सूफी-काव्य के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सूफियों ने अपनी साधना में नाथपंथी योगियों की साधना का सुन्दर समाहार कर लिया था |[8] आगे वे कहते हैं "हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानों में योग और भोग शब्द का प्रयोग साथ-साथ किया गया है और यह दिखाया गया है कि प्रत्येक योगी का लक्ष्य भोग या भुगुति है | वस्तुत: दशवीं शताब्दी में नाथपंथ के अभ्युदय तक योग साधना में श्री सुंदरी साधना की स्थापना हो चुकी थी और यह प्रतिपादित किया जाने लगा था किसी सुंदरी साधना में तत्पर व्यक्ति के लिए योग और भोग करस्थ होते हैं |....सूफी प्रेम साधना ही भोग और उसके पूर्व की साधना 'योग' है |"[9]

समरसता और समन्वय की यह साधना सभी सांस्कृतिक आलोचकों में दिखाई देती है | कबीर और तुलसी में आलोचकों ने प्राय: विभेद के दर्शन किये हैं | आचार्य विष्णुकांत शास्त्री कबीर और तुलसी के आतंरिक साम्य पर विचार कर समन्वय के बिंदु की खोज करते हैं | वे तुलसी और कबीर दोनों को हिन्दी बोलनेवाली जनता के ह्रदय के सर्वाधिक निकट मानते हुए तर्क देते हैं कि यदि दोनों कवि इतने विरोधी हैं तो दोनों को जनता इतना प्यार क्यों करती है, यही दोनों की आधारभूत एकता का अखंड प्रमाण है | दोनों में जो विभेद दिखाई देता है वह उनकी भिन्न सामाजिक स्थितियों के कारण है |[10]उनकी स्पष्ट मान्यता है "...कबीरदास भी यदि आदर्श समाज का विस्तृत रूप अंकित करते, तो वह तुलसी के रामराज्य से मिलता-जुलता होता | कबीर भी ऐसा ही समाज चाहते थे, जिसमें कोई दरिद्र,

[6]कन्हैया सिंह, उदार इस्लाम का सूफी चेहरा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृ.103
[7]वही, पृ. 107
[8]वही. पृ. 98
[9]वही, पृ.99
[10]विष्णुकांत शास्त्री,*कबीरदास और तुलसीदास का आतंरिक साम्य*,,विष्णुकांत शास्त्री : चुनी हुई रचनाएँ-1 , श्री बड़ाबाजारकुमारसभा पुस्तकालय, कोलकाता, 2003,पृ. 139

दु:खी, दीन, अबुध और लक्षणहीन न हो, सब सुन्दर, नीरोग, गुणज्ञ, ज्ञानी और कृतज्ञ हों,सर्वोपरि *'राम भगति रत नर अरु नारी | सकल परम गति के अधिकारी' |"*[11]

समन्वय और समरसता के साधकों को कबीर की तरह समन्वय और समरसता के बाधक तत्त्वों के प्रत्युत्तर की आवश्यकता भी पड़ती रही है | हिन्दी की आरंभिक आलोचना से लेकर स्वातंत्र्योत्तर आलोचना में लगभग 1960 के आस-पास तक सांस्कृतिक तत्त्वों की प्रधानता रही |महावीरप्रसादद्विवेदीरामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा अन्य आलोचकों का संघर्ष मूलत:योरोपीय मानस और औपनिवेशिकनिर्मितियोंसे है| आगे जब भारत विखंडन और आत्महीनता पैदा करनेवालीऔपनिवेशिकअवधारणाएँमार्क्सवाद की विचारधारा के कलेवर में प्रबल रूप में सामने आने लगीं और साहित्य में एजेंडा और प्रोपगैंडा का दौर चला तब प्रत्युत्तर की आवश्यकता पड़ी|सांस्कृतिक आलोचना का आरम्भ यहीं से होता है | सांस्कृतिक आलोचना आलोचना में सांस्कृतिक तत्त्वों की प्रबलपुनर्वापसी भी है और प्रत्युत्तर भी | राजनीति का अनुवर्तन करती प्रगतिवादी आलोचना के समक्ष संयत भाव से प्रत्युतर है सांस्कृतिक आलोचना | साहित्य को राजनीति के आगे मशाल के रूप में पुन: स्थापित करने का उद्यम लेकर सांस्कृतिक आलोचना चली |चूँकि, सांस्कृतिक आलोचक सनातन के प्रवाह में साहित्य को समझने का प्रयास है इसलिए प्रत्युत्तर के बावजूद प्रतिक्रियावाद इनमें दिखाई नहीं देता |अत: आलोचना में 'कूडावाद' और गालीवाद की विकृतियों से यह आलोचना मुक्त है |

सांस्कृतिक आलोचना में प्रत्युत्तर की दृष्टि से सर्वाधिक समर्थ आलोचक हैं कमल किशोर गोयनका |आज प्रेमचन्द के वे सबसे बड़े आलोचक हैं | उन्होंने प्रेमचंद के सम्बन्ध में निर्मित अनेक धारणाओं का खंडन किया है तथा उनके अप्राप्य साहित्य की खोज कर उन्हेंवामपंथी वृत्त से बाहर निकाला है | प्रेमचंद के भारतबोध का सम्यक् विश्लेषण कर उन्होंने प्रेमचन्द को केवल निम्न वर्ग के बजाय सभी वर्गों का लेखक माना है[12] तथा इस धारणा का खंडन किया है कि बाद में प्रेमचंद ने आदर्श को छोड़ यथार्थवाद स्वीकार कर लिया था |उनकी दृष्टि में प्रेमचंद सदैवआदर्शोन्मुखी बने रहे|[13]प्रेमचंद की

---

[11]वही, पृ.156
[12]कमल किशोर गोयनका , प्रेमचन्द, साहित्य अकादमी, दिल्ली, 2013, पृ.116
[13]वही, पृ. 72-73

कामरेड छवि को ध्वस्त कर गोयनका सिद्ध करते हैं कि प्रेमचंद ने रूसी क्रांति से कभी सहमति व्यक्त नहीं की और न ही कभी कम्युनिज्म को स्वीकार किया|[14]प्रेमचंद पर जितना व्यापक कार्य कमल किशोर गोयनका ने किया है वैसा कार्य हिन्दी के किसी भी आधुनिक लेखक या कवि पर दिखाई नहीं देता | किसी लेखक या कवि पर समग्र चिंतन की दृष्टि से गोयनका अनुकरणीय हैं| यही नहीं प्रवासी साहित्य की दृष्टि से भी गोयनका हिन्दी आलोचकों में महत्त्वपूर्ण हैं |

प्रत्युतर की दृष्टि से रामस्वरूपचतुर्वेदी का ऐतिहासिक महत्त्व है | 'ताते हिन्दू रहिए' और 'आधा हिन्दू रहिए' विषयक वाद-विवाद उनकी प्रत्युत्तर शैली का अप्रतिम उदाहरण है | काव्यभाषाकी बुनावट के आधार पर युग और रचनाकारके मूल्यांकन में सर्वाधिक समर्थ आलोचक हैं रामस्वरूपचतुर्वेदी | बदलती काव्यभाषासे कैसे युग की प्रवृत्तियों को पहचाना जाए यह रामस्वरूपचतुर्वेदी के इतिहास बोध का केन्द्र-बिंदु है | 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' पुस्तक इस इतिहास बोध की सुसंगत प्रस्तुति है| भाषा में परिवर्तन साथ वे सम्वेदना में भी परिवर्तन लक्षित करते हैं और उसे सांस्कृतिक चेतना के अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में भी व्याख्यायित करते हैं | हिन्दी कविता के विकास पर उनकी टिप्पणी है :

भारतेंदु से काव्यभाषा का आधार बदलता है -–ब्रजभाषा से खड़ी बोली, जहाँ क्रमशः द्विवेदी युग के प्रचलित अप्रस्तुत विधान के बीच से बिम्ब की नयीपहिचान उभरती है, जिस बिंदु पर समस्त भावबोध एकबारगी जटिलतर होता है और संश्लिष्टता की ओर झुकाव बढ़ता है | उदाहणार्थ, भक्ति का रूप अध्यात्म प्रेम में परिणत होता है, और ईश-वंदना का स्थान देश वंदना लेती है | फिर नवविकसित राष्ट्रीयता की क्रमशः सूक्ष्मतर होती अभिव्यक्ति है –देशभक्ति से राष्ट्रीयता और राष्ट्रीयता से सांस्कृतिक चेतना, जो धीरे-धीरे जनचेतना का रूप ग्रहण करती है |[15]

रामस्वरूपचतुर्वेदीकाव्यभाषा में परिवर्तन के साथ ही स्पष्ट करते हैं कि भारतेंदु युग के केंद्र में जो देशभक्ति है उसी का सूक्ष्म रूप द्विवेदी युग की राष्ट्रीयता है और छायावाद की सांस्कृतिक चेतना इस राष्ट्रीयता का सूक्ष्म रूपहै | यही नहीं भारतेंदु युग की खड़ी बोली कीदेश-वंदना ब्रजभाषा की भक्ति चेतना का रूपांतरण है | ऐसा ही गहन सांस्कृतिक बोध और विश्लेषण सांस्कृतिक आलोचना का लक्ष्य

[14]वही,पृ.69

[15]रामस्वरूपचतुर्वेदी,हिन्दी काव्य-संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2003, पृ.127

है | रामस्वरूपचतुर्वेदी ने जिसे काव्यभाषा के स्तर पर उपलब्ध किया है उसे किसी और प्रविधि या आधार से भी प्राप्त किया जा सकता है |

राममूर्ति त्रिपाठी के गहन सांस्कृतिक बोध का आधार भारतीय काव्यशास्त्रहै | रस सिद्धांत की अर्वाचीन व्याख्या और उस निकष पर मूल्यांकन राममूर्ति त्रिपाठी की विशेषता है | 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: प्रस्थान और परंपरा' पुस्तक में वे लिखते हैं "निष्कर्ष यह कि अद्यतन परिणत रचना पर भी संचरित शुक्ल सम्मत रसात्मक मानदंड की संभावनाएं नि:शेष नहीं हुई हैं |"[16] इसी रसात्मक मानदंड की निर्मिति और उसका निर्वाह राममूर्तित्रिपाठी में सर्वत्र दिखाई देता है| उनके द्वारा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की आलोचना दृष्टि का मूल्यांकन इसी निर्वाह का परिचायक है:

आधुनिक युग के इन सभी चिंतकों ने 'मानव' को केंद्र में रखकर ही साहित्य पर विचार किया है –पर मानव या मानवता की व्याख्या सबकी अलग-अलग है |शुक्लजी के यहाँ मानवता एक लोक-मांगलिक नैतिक चेतना है | डॉ. नगेन्द्रमनोविज्ञान की ही सीमा में व्याख्या करेंगे | वाजपेयी जी मानवीय नैतिक मूल्यों को जो समग्र वैदिक दृष्टि से जिए गए जीवन की प्रयोगशाला से प्रसूत हैं -मानव मानस में ही व्याप्त मानते हैं---अत: काव्यानुभूति को मानव मन की गहराइयों से ही सम्पृक्त करते हैं |इन सबके बीच हजारी प्रसाद द्विवेदी खुलकर मानवता को अखंड चिदाह्लाद्मय तत्त्व स्वीकार करते हैं –वही अखंड सार्वभौम और शाश्वत 'संस्कृति' है| मानव की वैश्विक जययात्रा इसी 'स्व-भाव' की उपलब्धि के लिए है | उनका चिंतन नवजागरण के 'शक्तिवाद' में आस्था रखता है | तिरोधान इस शक्ति का स्वभाव् है--पहचान है | यह लोकमंगल के लिए गलित द्राक्षा की तरह अपने को सर्वथा परार्थ तिरोहित कर देती है | इसीलिए तंत्रों में इसे 'तिरोधानस्वरूपा' 'निषेध व्यापाररूपा' कहा गया है| इसी अखंड मानवता का साक्षात्कार ही काव्य का प्रयोजन है—वही रस है | हमारे समस्त चिंतन और व्यापार का लक्ष्य वही है | काव्य भी वहीँ तक पहुंचाने का एक प्रस्थान है |[17]

राममूर्ति त्रिपाठी का आलोचना में योगदान इसी दृष्टिकोण के कारण है | हिन्दी आलोचना में काव्यशास्त्रीय मानदंड को लेकर व्याख्या करने वाले सर्वाधिक समर्थ आलोचक राममूर्ति त्रिपाठी हैं | सांस्कृतिक आलोचना की यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है |

[16]राममूर्ति त्रिपाठी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: प्रस्थान और परंपरा,वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली,2008, पृ.
[17]राममूर्ति त्रिपाठी, भारतीय काव्य विमर्श,वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009,पृ. 305-306

Journal of Interdisciplinary and Multidisciplinary Research (JIMR)
E-ISSN:1936-6264| Impact Factor: 8.886|
Vol. 18 Issue 11, Nov- 2023
Available online at: https://www.jimrjournal.com/
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

हिन्दी आलोचना के केंद्र में भक्ति साहित्य है |वाद-विवाद और संघर्ष के केंद्र में भी भक्तिकाल रहा है |भक्ति साहित्य के अध्ययन में पीताम्बरदत्तबडत्थ्वाल का विशेष योगदान रहा है | उनके बाद परशुराम चतुर्वेदी नेइसे आगे बढ़ाया और प्रचुर लेखन किया | आज नंदकिशोरपाण्डेय इस परम्परा के वाहक के रूप में सामने आते हैं | उन्होंने 'संत साहित्य की समझ', संत रज्जब और दादूपंथ के शिखर संत जैसी पुस्तकों की रचना कर भक्ति अध्ययन की परम्परा को समृद्ध किया है |नंदकिशोरपाण्डेय गहन सांस्कृतिक बोध के साथ भक्ति साहित्य के अध्ययन में प्रवृत्त होते हैं | अत: विभेदों में एकत्व की खोज उनकी दृष्टि की विशेषता है "सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति, मेधा और वाङ्मयकी श्रेष्ठ संरचना 'राम' को निर्गुण संतों ने सर्वव्यापक, सर्वग्राही, कण-कण में विद्यमान तत्त्व के रूप में देखा|.....जिस तत्त्व को सारी दुनिया 'दशरथ सुत' के रूप में देखती है, उसे संतों ने 'राम नाम का मरम है आना' कहकर देखा | सगुण-निर्गुण सभी ने 'राम-तत्त्व' को स्वीकार किया, उसका स्वरूप भिन्न -भिन्न भले ही हो | राम से न सगुण अलग हो सकता है न निर्गुण |"[18]राम सनातन हैं और सगुण अथवा निर्गुण भक्ति पद्धति ने इन्हें स्वीकार किया है | इन्हें चाहे जिस रूप में स्वीकार किया जाए, केंद्र में राम हैं | यही सांस्कृतिक दृष्टि है | सनातन के प्रवाह में साहित्य के मूल्यांकन की यही प्रणाली सांस्कृतिक आलोचना की विशेषता है |सगुण-निर्गुण के कठोरविभेदपरक दृष्टिकोण, क्रांतिकारिता बनाम यथास्थितिवाद, सवर्ण बनाम अवर्ण, ब्राहमण बनाम शूद्र आदि सरणियों से परे जाकर नंदकिशोरपाण्डेय भारतीय सांस्कृतिक प्रवाह में भक्ति-सम्प्रदायों के योगदान का विश्लेषण करते हैं|दादूपंथ के योगदान का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं "विभिन्न प्रकार के धार्मिक समुदायों के बीच दार्शनिक मतों के ग्रहण त्याग की दृष्टि से काव्यात्मक प्रस्तुति और उस पर की गई दार्शनिक, साहित्यिक व्याख्याओं का जनसमुदाय तक प्रेषण तथा स्वीकार्यता की सीमा तक पहल का नाम दादूपंथ है | दादूपंथ ने दर्शन और साहित्य का संरक्षण, त्याग और तितिक्षा के साथ अध्ययन, स्मरण लेखन, पठन-पाठन, अध्यापन, संग्रह, संकलन, सम्पादन के साथ ही परंपरा रक्षक योद्धा बनकर किया | कविता और साधुता का एक ऐसा पटल निर्मित किया, जिस पर तीन सौ वर्षों तक भारतीयता बोध का अंकन होता रहा |''[19]

[18]डॉ. नंदकिशोरपाण्डेय, संत साहित्य की समझ, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2001, पृ. 210
[19]नंदकिशोरपाण्डेय,दादूपंथ के शिखर संत, सामयिक पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2021, पृ. 9-10

नंदकिशोरपाण्डेय भक्ति साहित्य गंभीर आलोचक के साथ ही कुशल सम्पादक भी हैं | 21वीं शती कीराष्ट्रीय चेतनासंपन्न साहित्यिक पत्रकारिता को उन्होंने अपने सम्पादन से समृद्ध किया है | इसके अतिरिक्त भारतीय भाषाओं के कोश-निर्माण का बृहत्तर कार्य भी उनके निर्देशन में हुआ है |

आलोचना की सैद्धांतिकी की दृष्टि से विचार करें तो परवर्ती युग में एक बड़ा नाम आता है निर्मल वर्मा का | निर्मल वर्मा एक चिंतक की तरह सामने आते हैं | कला, भाषा, साहित्य, संस्कृति, जातीय अस्मिता और भारतबोध सब पर उन्होंने विचार किया है | यद्यपि निर्मल वर्मा मूलत: रचनाकार हैं ,किन्तु कला का जोखिम, हर बारिश में.., भारत और यूरोप: प्रतिश्रुति के क्षेत्र और साहित्य का आत्म-सत्य जैसी पुस्तकों में उनका चिंतक रूप सामने आता है | भारतीय दृष्टि का वैशिष्ट्य औरभारतबोधप्रशस्त रूप में निर्मल वर्मा में दिखाई देता है ,"...किन्तु काल के आनुक्रमिक बोध ने आधुनिक भारतीय उपन्यास और कथ्यात्मक गद्य की सम्भावनाओं को अवश्य ही जड़ित और संकुलित बनाया है, इसमें कोई संदेह नहीं |शायद इसका कारण यह भी है कि उपन्यास की संरचना में घटनाओं को जिस क्रम से नियोजित किया जाता है, उसमें कविता की अपेक्षा समय का हस्तक्षेप अधिक महत्त्वपूर्ण होता है | ऐतिहासिक कालबोध और भारतीय उपन्यास के सन्दर्भ में भारतीय मनीषा में काल की अनेक परिकल्पनाएं रही हैं, उन्हें पाश्चात्य ऐतिहासिक बोध की अवधारणा में ढालकर हमने उन्हें विपन्न और एकआयामी बनाया है जिसका असर अनिवार्य रूप से रचनात्मक विधाओं की भाषा पर भी पड़ता है |"[20]कालबोध की पाश्चात्य प्रणाली ने भारतीय रचनाधर्मिताको प्रभावित किया है | कथा, आख्यायिका जैसे बहुत से गद्य रूप गद्य काल कहे जाने वाले युग में समाप्त हो गए| सांस्कृतिक आलोचना का दायित्व भारतीय रचनाधर्मिता में भारतीय दृष्टिकोण का समावेश कर मौलिक सर्जना का पथ प्रशस्त करना है | अब तक पश्चिम के साहित्यान्दोलनों ने भारत को प्रभावित किया है | अब यह स्थिति परिवर्तित होनी चाहिए | भारतबोध की दृष्टि से साहित्य सृजन का मार्ग ही वरेण्य है | सांस्कृतिक आलोचना की आवश्यकता इस दृष्टि से है |

सांस्कृतिक आलोचना वर्तमान समय की सबसे प्रबल आलोचना धारा बनने की ओर गतिशील है | आज आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है |युगानुकूलमानदंड विकसित कर आधुनिक साहित्य को देखना आवश्यक है | हिन्दी आलोचना में आज 'कूड़ावाद' और

[20]निर्मल वर्मा, साहित्य का आत्म-सत्य, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली , 2017, पृ. 25

'गालीवाद' का प्रचलन है | बाजार के दबाव ने मूल्यों का संकट उत्पन्न कर दिया है |सांस्कृतिक आलोचना ही हिन्दी आलोचना को इससे बाहर निकाल सकती है | आज हिन्दी जगत आशा और आकांक्षा भरी दृष्टि से सांस्कृतिक आलोचना की ओर देख रहा है |